कुदो एदं होदि ? ईहावायावरणीयाणं तिव्वक्खओवसमेण ।

णमो संभिण्णसोदाराणं ।। ९ ।।

जिणाणमिदि अणुवट्टदे । सम्यक् श्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमेन भिन्नाः अनुविद्धाः संभिन्नाः, संभिन्नाश्च ते श्रोतारश्च संभिन्नश्रोतारः । अणेगाणं सद्दाणं अक्खराणक्खरसरूवाणं कधंचियामक्कमेण पवुत्ताणं सोदारा संभिण्णसोदारा त्ति णिद्दिट्ठा[१] ।

नवनागसहस्राणि नागे नागे शतं रथाः ।
रथे रथे शतं तुर्गाः तुर्गे तुर्गे शतं नराः ।। १९ ।।

....

शंका - यह किससे होती है ?

समाधान - ईहावरणीय और अवायावरणीयके तीव्र क्षयोपशमसे होती है ।

संभिन्नश्रोता जिनोंका नमस्कार हो ।। ९ ।।

'जिनोंको' इस पदकी अनुवृत्ति आती है । सं अर्थात् भले प्रकार श्रोत्रेन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे जो भिन्न-अनुविद्ध हैं, वे संभिन्न कहलाते हैं; संभिन्न ऐसे जो श्रोता वे संभिन्नश्रोता हैं । कथंचित् युगपत् प्रवृत्त हुए अक्षर-अनक्षर स्वरूप अनेक शब्दोंके श्रोता संभिन्नश्रोता हैं, ऐसा निर्देश किया गया हैं ।

एक अक्षौहिणीमें नौ हाजर हाथी, एक हाथीके आश्रित सौ रथ, एक एक रथके आश्रित सौ घोडे और एक एक घोडेके आश्रित सौ मनुष्य होते हैं ।। १९ ।।

....

१ सादिंदियसुदणाणावरणाणं वीरियंतरायाए । उक्कस्सखउवसमे उदिदंगोवंगणामकम्मम्मि ।। सोदुक्कस्सखिदीदो बाहिं संखेज्जजोयणपएसे । संठियणर-तिरियाणं बहुविहसद्दे समुट्ठंते ।। अक्खर-अणक्खरमए सोदूणं दसदिसासु पत्तेक्कं । जं दिज्जदि पडिवयणं तं चिय संभिण्णसोदित्तं ।। ति. प. ४, ९८४-९८६. द्वादशयोजनायामे नवयोजनविस्तारे चक्रधरस्कंधावारे गज-वाजि-खरोष्ट्र-मनुष्यादीनां अक्षरानक्षररूपाणं नानाविधशब्दानां युगपदुत्पन्नानां तपोविशेषबललाभापादितसर्वजीवप्रदेशश्रोत्रेन्द्रियपरिणामात् सर्वेषामेककालग्रहणं संभिन्नश्रोतृत्वम् ।। त. रा. ३, ३६, २. जो सुणइ सव्वओ मुणइ सव्वविसए उ सव्वसोएहिं । सुणइ बहुए वि सद्दे भिन्ने संभिन्नसोओ सो ।। प्रवचनसारोद्धार १४९८.

एदमेक्कक्खोहिणीए पमाणं । एरिसियाओ चत्तारि अक्खोहिणीओ सग-सग-भासाहि अक्खराणक्खरसरूवाहि अक्कमेण जदि भणंति तो वि संभिण्णसोदारो अक्कमेण सव्वभासाओ घेत्तूण पदुप्पादेदि । एदेहिंतो संखेज्जगुणभासासंभरिदतित्थयरवयणविणिग्गय-ज्झुणि समूहमक्कमेण गहणक्खमम्मि संभिण्णसोदारे ण चेदमच्छरयं । कुदो एदं होदि ? बहुबहुविहक्खिप्पावरणीयाणं खओवसमेण । एदेसिं संभिण्णसोदाराणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि । संपहि ओग्गह-ईहावाय-धारणजिणणमेदेसु चेव अंतब्भावो होदि त्ति पुध णमोक्कारो ण कदो । उजुमदीणं णमोक्कारकरणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

णमो उजुमदीणं ।। १० ।।

परकीयमतिगतोऽर्थः उपचारेण मतिः । ऋज्वी अवक्रा । कथमृजुत्वम् ? यथार्थमत्यारोहणात् यथार्थमभिधानगतत्वात् यथार्थमभिनयगतत्वाच्च । ऋज्वी मतिर्यस्य

....

यह एक अक्षौहिणीका प्रमाण है । ऐसी चार अक्षौहिणी अक्षर-अनक्षर स्वरूप अपनी अपनी भाषाओंसे यदि युगपत् बोलें तो भी संभिन्नश्रोता युगपत् सब भाषाओंको ग्रहण करके प्रतिपादन करता है । इनसे संख्यातगुणी भाषाओंसे भरी हुई तीर्थंकरके मुखसे निकली हुई ध्वनिके समूहको युगपत् ग्रहण करनेमें समर्थ ऐसे संभिन्नश्रोताके विषयमें यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है ।

शंका - यह किससे होती है ?

समाधान - बहु, बहुविध और क्षिप्र ज्ञानावरणीय कर्मोंके क्षयोपशमसे होती है ।

इन संभिन्नश्रोता जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है । अब अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा रूप जिनोंका चूंकि इन्हींमें अन्तर्भाव होता है, अतः उन्हें पृथक् नमस्कार नहीं किया । ऋजुमति जिनोंको नमस्कार करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं -

ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानियोंको नमस्कार हो ।। १० ।।

दूसरेकी मति अर्थात् मनमें स्थित अर्थ उपचारसे मति कहा जाता है । ऋजुका अर्थ वक्रता रहित है ।

शंका - ऋजुता किस कारणसे है ?

समाधान - यथार्थ मतिका विषय होनेसे, यथार्थ वचनगत होनेसे और यथार्थ अभिनय अर्थात् शारीरिक चेष्टागत होनेसे उक्त मतिमें ऋजुता है ।

ऋजु है मति जिसकी वह ऋजुमति कहा जाता है । सरलतासे मनोगत, सरलतासे

सः ऋजुमतिः[1] । उज्जुवेण मणोगदं उज्जुवेण वचि-कायगदमत्थमुज्जुवं जाणंतो तव्विवरीदमणुज्जु-वमत्थमजाणंतो मणपज्जवणाणी उजुमदि त्ति भण्णदे । अचिंतिदमउत्तमणभिणइदमत्थं किमिदि ण जाणदे ? ण, विसिट्ठखओवसमाभावादो । मदिणाणेण वा सुदणाणेण वा मण-वचि-कायभेदं णादूण पच्छा तत्थट्ठिदमत्थं पच्चक्खेण जाणंतस्स मणपज्जवणाणिस्स दव्व-खेत्त-कालभावभेएण विसओ चउव्विहो । तत्थ उज्जुमदी एगसमइयमोरालियसरीरस्स णिज्जरं जहण्णेण जाणदि[2] । सा तिविहा जहण्णुक्क-स्सतव्वदिरित्तओरालियसरीरणिज्जरा त्ति । तत्थ कं जाणदि ? तव्वदिरित्तं । कुदो ? सामण्णणिद्देसादो । उक्कस्सेण एगसमइयमिंदियणिज्जरं जाणदि । ओरालियसरीरिंदि-

....

वचनगत व कायगतसे अर्थको सरलतासे जाननेवाला, और उससे विपरीत वक्र अर्थको न जाननेवाला मनःपर्ययज्ञानी ऋजुमति कहा जाता है ।

शंका - ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी मनसे अचिन्तित, वचनसे अनुक्त और अनभिनीत अर्थात् शारीरिक चेष्टाके अविषयभूत अर्थको क्यों नहीं जानता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, उसके विशिष्ट क्षयोपशमका अभाव है ।

मतिज्ञान अथवा श्रुतज्ञानसे मन, वचन व कायके भेदको जानकर पीछे वहां स्थित अर्थको प्रत्यक्षसे जाननेवाले मनःपर्ययज्ञानीका विषय द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावके भेदसे चार प्रकारका है । इनमें ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जघन्यसे एक समय सम्बन्धी औदारिक शरीरकी निर्जराद्रव्यको जानता है ।

शंका - वह औदारिक शरीरकी निर्जरा जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्त भेदसे तीन प्रकारकी है । उनमेंसे किस निर्जराको वह जानता है ?

समाधान - तद्व्यतिरिक्त औदारिक शरीरकी निर्जराको वह जानता है, क्योंकि, यहां सामान्य निर्देश है ।

उक्त ज्ञान उत्कृष्टसे एक समय सम्बन्धी इन्द्रियनिर्जराको जानता है ।

....

१ रिउ सामन्नं तम्मत्तगाहिणी रिउमई मणोनाणं । पायं विसेसविमुहं घडमेत्तं चिंतियं मुणइ ॥ प्रवचनसारोद्धार १४९९.

२ य कार्मणद्रव्यानन्तभागोऽन्त्यः सर्वावधिना ज्ञातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागः ऋजुमतेर्विषयः । स. सि. १, २४. अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयबद्धं तु । चक्खिंदियणिज्जिण्णं उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ॥ गो. जी. ४५१. तत्थ दव्वओ णं अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ ॥ नं. सू. १८.

यणिज्जराणं ण भेदो, इंदियवदिरित्तओरालियसरीराभावादो त्ति उत्ते ण एस दोसो, सव्विंदियाणमग्गहणादो । पुणो कमिंदियं घेप्पदि ? चक्खिंदियं । कुदो ? सेसेंदिएहिंतो अप्पपरिमाणत्तादो, सगारंभकपोग्गलखंधाणं सण्हत्तादो वा । इदमेव इंदियं घेप्पदि त्ति कधं णव्वदे ? गुरूवदेसादो । घाण-सोदिंदिएहिंतो चक्खिंदियस्स महल्लत्तं दिस्सदे चे ण, चक्खुगोलयमज्झट्ठियाए मसूरियागाराए ताराए चक्खिंदियत्तब्भुवगमादो । चक्खिंदियणिज्जरा वि जहण्णुक्कस्स-तव्वदिरित्तभेएण तिविहा, तत्थ काए गहणं ? तव्वदिरित्ताए । कुदो ? सामण्णणिद्देसादो । जहण्णुक्कस्सदव्वाणं मज्झिमदव्व-वियप्पे तव्वदिरित्ता उज्जुमदी । खेत्तेण जहण्णं गाउवपुधत्तं, उक्कस्सेण जोयणपुधत्तं[१] ।

....

शंका - औदारिकशरीरनिर्जरा और इन्द्रियनिर्जराके बीच कोई भेद नहीं है, क्योंकि, इंद्रियोंसे भिन्न औदारिक शरीरका अभाव है ?

समाधान - इस शंकापर कहते हैं कि यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यहां सब इन्द्रियोंका ग्रहण नहीं है ।

शंका - तो फिर किस इन्द्रियको ग्रहण किया है ?

समाधान - चक्षुरिन्द्रियको ग्रहण किया है, क्योंकि, वह शेष इन्द्रियोंकी अपेक्षा अल्पप्रमाणवाली है, अथवा वह अपने आरम्भक पुद्गलस्कंधोंकी सूक्ष्मतासे युक्त है ।

शंका - इसी इन्द्रियको ग्रहण किया गया है, यह किस प्रमाणसे जाना जात है ?

समाधान - यह गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

शंका - घ्राण और श्रोत्र इन्द्रियकी अपेक्षा चक्षुरिन्द्रियके विशालता देखी जाती है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, चक्षुगोलकके मध्यमें स्थित मसूरके आकार ताराको चक्षुरिन्द्रिय स्वीकार किया है ।

शंका - चक्षुरिन्द्रियकी निर्जरा भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारकी हैं, उनमें कौनसी निर्जराका ग्रहण किया है ?

समाधान - तद्व्यतिरिक्त निर्जराका ग्रहण किया है, क्योंकि, उसका सामान्य निर्देश है ।

जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्यके मध्यम द्रव्यविकल्पोंको तद्व्यतिरिक्त ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जानता है । क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्यसे वह गव्यूतिपृथक्त्व और उत्कर्षसे

....

१ क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण योजनपृथक्त्वस्याभ्यन्तरं न बहिः । स. सि. १, २३. त. रा. १, २३, ९. गाउयपुधत्तमवरं उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं ॥ गो. जी. ४५५.

जहण्णुक्कस्सखेत्ताणं मज्झिमवियप्पे तव्वदिरित्ता उजुमदी जाणदि । कालदी जहण्णेण दो-तिण्णिभवग्गहणाणि जाणदि । तीदाणि अणागयाणि च भवग्गहणाणि दो चेव जाणदि, वट्टमाणेण सह तिण्णि[1] । ण वट्टमाणभवग्गहणं, तीदाणागयाउ-संपयासंपय-भुत्त-कयपडिसेवियादिणाणासुहुमत्थाइण्णस्स सुजाणत्तविरोहादो । उक्कस्सेण सत्तट्ठभव-ग्गहणाणि । तीदाणागयाणि सत्त, वट्टमाणेण सह अट्ठ भवग्गहणाणि जाणदि । जहण्णु-क्कस्सकालाणं मज्झिमवियप्पं तव्वदिरित्तउज्जुमदी जाणदि । भावेण जहण्णुक्कस्सदव्वेसु तप्पाओग्गे असंखेज्जे भावे जहण्णुक्कस्सउजुमदिणो जाणंति[2] । एतेभ्यः ऋजुमतिजिनेभ्यो नमः ।

....

योजनपृथक्त्वको जानता है । जघन्य व उत्कृष्ट क्षेत्रके मध्यम विकल्पोंको तद्व्यतिरिक्त ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानता है । कालकी अपेक्षा जघन्यसे दो और तीन भवग्रहणोंको जानता है । अतीत और अनागत दो ही भवग्रहणोंको जानता है । वर्तमान भवके साथ तीन भवोंको जानता है । किन्तु इसमें वर्तमान भवका ग्रहण नहीं हैं, क्योंकि, अतीत और अनागत आयु, सम्पत् असम्पत्, भुक्त, कृत, प्रतिसेवित आदि नाना सूक्ष्म अर्थोंसे आकीर्ण भवके अच्छी तरह जानपनेमें विरोध आता है । उत्कृष्टसे सात-आठ भवग्रहणोंको जानता है । अतीत और अनागत सात, तथा वर्तमानके साथ आठ भवग्रहणोंको जानता है । जघन्य और उत्कृष्ट कालके मध्यम विकल्पको तद्व्यतिरिक्त ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानता है ।

भावकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्योंमें उसके योग्य असंख्यात पर्यायोंको जघन्य व उत्कृष्ट ऋजुमति जानते है । इन ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जिनोंके लिये नमस्कार हो ।

....

खेत्तओ णं उज्जुमई अ जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जयभागं । उक्कोस्सेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डगपयरे, उड्ढे जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरिय जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तीसाए अकम्मभूमिसु छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपंचिंदिआणं पज्जत्तआणं मणोगए भावे जाणइ पासइ ॥ नं. सू. १८.

१ तत्र ऋजुमतिर्मनःपर्ययः कालतो जघन्येन जीवानामात्मनश्च द्वित्रीणि भवग्रहणाणि, उत्कर्षेण सप्ताष्टौ गत्यागात्यदिभिः प्ररूपयति । स. सि. १, २३. त. रा. १, २३, ९. दुग-तिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं । गो. जी. ४५७. कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं अतीयमणागयं वा काल जाणइ पासइ । नं. सू. १८.

२ आवलिअसंखभागं अवरं च वरं च वरमसंखगुणं । गो. जी. ४५८. भावओ ण उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ । नं. सू. १८.

णमो विउलमदीणं ।। ११ ।।

परकीयमतिगतोऽर्थो मतिः । विपुला विस्तीर्णा । कुतो वैपुल्यम् ? यथार्थमनोगमनात् अयथार्थमनोगमनात् उभयथापि तदवगमनात्, यथार्थवचोगमनात् अयथार्थवचोगमनात् उभयथापि तत्र गमनात्, यथार्थकायगमनात् अयथार्थकायगमनात् ताभ्यां तत्र गमनाच्च वैपुल्यम् । विपुला मतिर्यस्य सः विपुलमतिः[१] । तद्योगाज्जिनोऽपि विपुलमतिः । उज्जुवाणुज्जवमण-वचि-कायगयं तेहि दोहि वि पयारेहि तेसिमगयमद्धगयं च वत्थुं जाणंतस्स विउलमदिस्स महण्णुक्कस्स-तव्वदिरितदव्व-खेत्त-काल-भावाणं परूवणा कीरदे - दव्वदो जहण्णेण एगसमयमिंदियणिज्जरं जाणादि[२] । उज्जुमदिउक्कस्सदव्वमेव कधं विउलमदिस्स तत्तो बहुवयरस्स विसओ होदि ? ण, चक्खिंदियस्स णिज्जराए अजहण्णुक्कस्साए अणंतवियप्पाए उजुमदिविसईकयउक्क-

....

विपुलमति जिनोंको नमस्कार हो ।। ११ ।।

दूसरेकी मतिमें स्थित पदार्थ मति कहा जाता है । विपुलका अर्थ विस्तीर्ण है ।

शंका - विपुलता किस कारणसे है ?

समाधान - जैसा पदार्थ है उस प्रकार मनको प्राप्त होनेसे, जैसा पदार्थ उसके विरुद्ध मनको प्राप्त होनेसे और दोनों प्रकारसे भी मनको प्राप्त होनेसे; यथार्थ वचनको प्राप्त होनेसे, अयथार्थ वचनको प्राप्त होनेसे, और उभय प्रकारसे मी उसमें प्राप्त होनेसे; यथार्थ कायको प्राप्त होनेसे, अयथार्थ कायको प्राप्त होनेसे तथा उन दोनों प्रकारोंसे भी वहां प्राप्त होनेसे विपुलता है ।

विपुल है मति जिसकी वह विपुलमति कहा जाता है । विपुल मतिके सम्बन्धसे जिन भी विपुलमति कहलाते हैं । ऋजु या अनृजु मन, वचन व कायमें स्थित उन दोनों ही प्रकारोंसे उनको अप्राप्त और अर्धप्राप्त वस्तुको जाननेवाले विपुलमतिके जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावकी प्ररूपणा करते हैं - द्रव्यकी अपेक्षा वह जघन्यसे एक समय में होनेवाली इन्द्रियनिर्जराको जानता है ।

शंका - ऋजुमतिका उत्कृष्ट द्रव्य ही उससे बहुत श्रेष्ठ विपुलमतिका विषय कैसे हो सकता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, अनन्त विकल्प रूप चक्षुरिन्द्रियकी अजघन्यानुत्कृष्ट निर्जराके

....

१ विउलं वत्थुविसेसण नाणं तग्गाहिणी मई विउला । चिंतियमणुसरइ घडं पसंगओ पज्जवसएहिं ।। प्रवचनसारोद्धार १५१०.

२ मणदव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं । खंडिदमेत्तं होदि हु विउलमदिस्सावरं दव्वं ।। गो. जी. ४५२.

स्सदव्वादो तप्पाओग्गहाणिमुवगयएगसमइयइंदियणिज्जरादव्वस्स विउलमदिविसयत्तेण अब्भुवगमादो । उक्कस्सदव्वं चाणवणट्ठं तप्पाओग्गासंखेज्जाणं कप्पाणं समए सलागभूदे ठविय मणदव्ववग्गणए अणंतिमभागं विरलिय अजहण्णाणुक्कस्समेगसमयपबद्धं विस्सासोवचयविरहिदमट्ठकम्मपडिबद्धं समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगखंडं बिदियवियप्पो होदि । सलागरासीदो एगरूवमवणेदव्वं । एवमणेण णेदव्वं जाव सलागरासी समत्तो त्ति । एत्थ अपच्छिमदव्ववियप्पमुक्कस्सविउलमदी जाणदि[1] । जहण्णुक्कस्सदव्वाणं मज्झिमवियप्पे तव्वदिरित्तविउलमदी जाणदि ।

खेत्तेण जहण्णं जोयणपुधत्तं । ण च उजुविउलमदिउक्कस्स-जहण्णखेत्ताणं समाणत्तं, जोयणपुधत्तम्मि अणेयभेयदंसणादो । उक्कस्सेण माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरदो, णो बहिद्धा[2] । पणदालीसजोयणक्खघणपदरं जाणदि त्ति उत्तं होदि[3] । एगागाससेडीए

....

ऋजुमति द्वारा विषय किये गये उत्कृष्ट द्रव्यकी अपेक्षा उसके योग्य हानिको प्राप्त एक समय रूप इन्द्रियनिर्जराका द्रव्य विपुलमतिका विषय माना गया है ।

उत्कृष्ट द्रव्यके ज्ञापनार्थ उसके योग्य असंख्यात कल्पोंके समयोंको शलका रूपसे स्थापित करके मनोद्रव्यवर्गणाके अनन्तवें भागका विरलन कर विस्रसोपचयरहित आठ कर्मसम्बद्धी अजघन्यानुत्कृष्ट एक समयप्रबद्धको समखण्ड करके देनेपर उनमें एक खण्ड द्रव्यका द्वितीय विकल्प होता है । इस समय शलाका राशिमेंसे एक कम करना चाहिये । इस प्रकार इस विधानसे शलाका राशि समाप्त होने तक ले जाना चाहिये । इनमें अन्तिम द्रव्यविकल्पको उत्कृष्ट विपुलमति जानता है । जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्यके मध्यम विकल्पोंको तद्व्यतिरिक्त विपुलमति जानता है ।

क्षेत्रकी अपेक्षा विपुलमतिका जघन्यसे योजनपृथक्त्व विषय है । ऋजुमतिका उत्कृष्ट और विपुलमतिका जघन्य क्षेत्र यहां समान नहीं है, क्योंकि, योजनपृथक्त्वमें अनेक भेद देखे जात हैं । उत्कर्षसे वह मानुषोत्तर पर्वतके भीतरकी बात जानता है, बाहरकी नहीं । तात्पर्य यह कि पैंतालीस लाख योजन घनप्रतरको जानता है ।

आकाशकी एक श्रेणी ही जानता है ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं । किन्तु वह घटित

....

१ अट्ठण्हं कम्माणं समयपबद्धं विविस्ससोवचयं । धुवहारेणिगिवारं भजिदे बिदियं हवे दव्वं ॥ अव्विदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं । धुवहारेणवहरिंदे होदि हु उक्कस्सयं दव्वं ॥ गो. जी. ४५३-४५४.

२ क्षेत्रतो जघन्येन योजनपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण मानुषोत्तरशैलस्याभ्यन्तरं न बहिः स. सि. १, २३ त. रा. १, २३, १०. विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं ॥ गो. जी. ४५५.

३ णरलोए त्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स । जम्हा तग्घणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं । गो. जी. ४५६.

चेव जाणदि त्ति के वि भणंति । तण्ण घडदे एवं, मणुस्सविज्जाहराईसु तस्स णाणस्स अप्पउत्तिप्पसंगादो । 'माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरदो चेव जाणदि णो बहिद्धा' त्ति वग्गणसुत्तेण णिद्दिट्ठत्तादो माणुसखेत्ते अब्भंतरट्ठिदसव्वमुत्तिदव्वाणि जाणंति णो बाहिराणि त्ति के वि भणंति । तण्ण घडदे, माणुसुत्तरसेलसमीवे ठाइदूण बाहिरदिसाइ कओवयोगस्स णाणाणुप्पत्तिप्पसंगादो । होदु चे ण, तदणुप्पत्तीए कारणाभावादो । ण ताव खओवसमाभावो, अब्भंतरदिसाविसयणाणुप्पत्तीए अण्णहाणुववत्तीदो खओवसमस्स अत्थित्तसिद्धीए । ण माणुसुत्तरसेलेण अंतरिदत्तादो परभागट्ठिदत्थेसु णाणाणुप्पत्ती, अणिंदियस्स पच्चक्खस्स तीदाणागयपज्जाएसु वि असंखेज्जेसु वावरंतस्स अब्भंतरदिसाए पव्वदादीहि अंतरिदत्थे वि जाणंतस्स मणपज्जवणाणिस्स माणुसुत्तरसेलेण पडिघादाणुववत्तीदो । तदो माणुसुत्तरसेलब्भंतरवयणं ण खेत्तणियामयं, किंतु माणुसुत्तरसेलब्भंतरपणदालीसजोयणलक्खणियामयं, विउलमदिमणपज्जवणाणुज्जोयसहिदखेत्तं घणागारेण ठइदे पणदालीसजोयणलक्खमेत्तं चेव होदि त्ति । अधवा उवदेसं लद्धूण वत्तव्वं ।

कालदो जहण्णं सत्तट्ठभवग्गहणाणि, उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भवग्गहणाणि

....

नही होता, क्योंकि ऐसा माननेपर मनुष्य एवं विद्याधरादिकोंमें विपुलमति मनःपर्ययज्ञानकी प्रवृत्ति न हो सकनेका प्रसंग आता है । मानुषोत्तर शैलके भीतर ही स्थित पदार्थको जानता है, उसके बाहिर नहीं ऐसा वर्गणासूत्र द्वारा निर्दिष्ट होनेसे मानुषक्षेत्रके भीतर स्थित सब मूर्त द्रव्योंको जानता है, उससे बाह्य क्षेत्रमें नहीं; ऐसा कोई आचार्य कहते हैं । किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा स्वीकार करनेपर मानुषोत्तर पर्वतके समीपमें स्थित होकर बाह्य दिशामें उपयोग करनेवालेके ज्ञानकी उत्पत्ति न हो सकनेका प्रसंग प्राप्त होता है । यदि कहा जाय कि उक्त प्रसंग आता है तो आने दीजिये, सो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि, उसके उत्पन्न न हो सकनेका कोई कारण नहीं है । क्षयोपशमका अभाव उसकी उत्पत्तिका कारण नहीं है, क्योंकि, उसके विना मानुषोत्तर पर्वतके अभ्यन्तर दिशाविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति भी घटित नहीं होती । अतः क्षयोपशमका अस्तित्व सिद्ध होता है । मानुषोत्तर पर्वतसे व्यवहित होनेके कारण परभागमें स्थित पदार्थोंमें ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती, यह भी नहीं हो सकता; क्योंकि, असंख्यात अतीत व अनागत पर्यायोंमें व्यापार करनेवाले तथा अभ्यन्तर दिशामें पर्वतादिकोंसे व्यवहित पदार्थोंको भी जाननेवाले मनःपर्ययज्ञानीके अनिन्द्रिय प्रत्यक्षका मानुषोत्तर पर्वतसे प्रतिघात हो नहीं सकता । अत एव 'मानुषोत्तर पर्वतके भीतर' यह वचन क्षेत्रका नियामक नहीं है, किन्तु मानुषोत्तर पर्वतके भीतर पैंतालीस लाख योजनोंका नियामक है, क्योंकि, विपुलमति मनःपर्ययज्ञानके उद्योत सहित क्षेत्रको घनाकारसे स्थापित करनेपर पैंतालीस लाख योजन मात्र ही होता है । अथवा उपदेश प्राप्त कर इस विषयका व्याख्यान करना चाहिये ।

कालकी अपेक्षा वह जघन्यसे सात आठ भवग्रहणोंको और उत्कर्षसे असंख्यात

जाणदि[1] । भावेण जं जं दिट्ठं दव्वं तस्स तस्स असंखेज्जपज्जाए जाणदि । एवंविधेभ्यो विपुलमतिभ्यो नम इति यावत् । संपधि विउलमदिजिणाणं णमोक्कारं काऊण सुदणाणजिणाणं णमोक्कारकरणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

णमो दसपुव्वियाणं ।। १२ ।।

एत्थ दसपुव्विणो भिण्णाभिण्णभेएण दुविहा होंति ।.तत्थ एक्कारसंगाणि पढिदूण पुणो परियम्म-सुत्त-पढमाणियोग-पुव्वगय-चूलिया त्ति पंचहियारणिबद्धदिट्ठिवादे पढिज्जमाणे उप्पादपुव्वमादिं कादूण पढंताणं दसम पुव्वे विज्जाणुपवादे समत्ते रोहिणीआदिपंचसयमहाविज्जाओ अंगुट्ठसेणादि सत्तसयदहरविज्जाहिं अणुगयाओ[2] किं भयवं आणवेदि त्ति ढुक्कंति । एवं ढुक्काणं सव्वविज्जाणं जो लोभं गच्छदि सो भिण्णदस-पुव्वी । जो पुण ण तासु लोभं करेदि कम्मक्खयत्थी होंतो सो अभिण्णदसपुव्वी णाम । तत्थ अभिण्णदसपुव्विजिणाणं णमोक्कारं करेमि त्ति उत्तं होदि ।

....

भवग्रहणोंको जानता है । भावकी अपेक्षा जो जो द्रव्य ज्ञात है उस उसकी असंख्यात पर्यायोंको जानता है । इस प्रकारके विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है । अब विपुलमति जिनोंको नमस्कार करके श्रुतज्ञानी जिनोंको नमस्कार करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं -

दशपूर्वीक जिनोंको नमस्कार हो ।। १२ ।।

यहां भिन्न और अभिन्नके भेदसे दशपूर्वी दो प्रकार हैं । उनमें ग्यारह अगोंको पढकर पश्चात् परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका, इन पांच अधिकारोंमें निबद्ध दृष्टिवादके पढते समय उत्पादपूर्वसे लेकर पढनेवालोंके दशम पूर्व विद्यानुप्रवादके समाप्त होनेपर अंगुष्ठप्रसेनादि सात सौ क्षुद्र विद्याओंसे अनुगत रोहिणी आदि पांच सौ महाविद्यायें 'भगवन् क्या आज्ञा है ?' ऐसा कहकर उपस्थित होती हैं । इस प्रकार उपस्थित हुई सब विद्याओंके लोभको जो प्राप्त होता है वह भिन्नदशपूर्वी है । किन्तु जो कर्यक्षयका अभिलाषी होकर उनमें लोभ नहीं करता है वह अभिन्नदशपूर्वी कहलाता है । उनमें अभिन्नदशपूर्वी जिनोंको नमस्कार करता हूं, यह सूत्रका अर्थ है ।

....

१ द्वितीयं कालतो जघन्येन सप्ताष्टौ भवग्रहणानि, उत्कर्षेणासंख्येयानि गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति । स. सि. १, २३. त. रा. १, २३, १०. अड-णवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ।। गो. जी. ४५७.

२ रोहिणिपहुदीण महाविज्जाणं देवदाउ पंच सया । अंगुट्ठपसेणाइं खुद्दअविज्जाण सत्त सया ।। एत्तूण पेसणाइं मग्गंते दसमपुव्वपढणम्मि णेच्छति संजमंता ताओ जे ते अभिण्णदसपुव्वी ।। भुवणेसु सुप्पसिद्धा विज्जाहरसमणणामपज्जाया । ताणं मुणीण बुद्धी दसपुव्वी णाम बोद्धव्वा । ति प ४,९९८-१००० महारोहिण्यादिभिस्त्रिभिरागताभिः प्रत्येकमात्मीयरूप[illegible]मर्थ्याविष्करण-कथनकुशलामिर्वेगवतीभिर्विद्यादेवताभिरविचलितचरित्रस्य दशपूर्व-समुद्रोत्तरणं दशपूर्वित्वम् । त. रा. ३, ३६, २.

भिण्णदसपुव्वीणं कधं पडिणियत्ती ? जिणसद्दाणुवुत्तीदो । ण च तेसिं जिणत्तमत्थि, भग्गमहव्वएसु जिणत्ताणुववत्तीदो । आचारांगादिहेट्ठिमअंग-पुव्वधराणं णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, तेसिं पि णमोक्कारो कदो चेव, तेसिमेत्थुवलंभादो । चोद्दसपुव्वहराणं णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, जिणवयणपच्चयट्ठाणपदुप्पायणदुवारेण दसपुव्वीणं चागमहप्पपदरिसणट्ठं पुव्वं तण्णमोक्कारकरणादो । सुदपरिवाडीए वा पुव्वं दसपुव्वीणं णमोक्कारो कदो ।

णमो चोद्दसपुव्वियाणं ।। १३ ।।

जिणाणमिदि एत्थाणुवट्टदे । सयलसुदणाणधारिणो चोद्दसपुव्विणो[1] । तेसिं

....

शंका - भिन्नदशपूर्वियोंकी व्यावृत्ति कैसे होती है ?

समाधान - जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे उनकी व्यावृत्ति होती है । भिन्नदशपूर्वियोंके जिनत्व नहीं है, क्योंकि, जिनके महाव्रत नष्ट हो चुके हैं उनमें जिनत्व घटित नहीं होता ।

शंका - आचारांगादि अधस्तन अंग और पूर्वके धारकोंको नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, उनको भी नमस्कार किया ही है; क्योंकि, वे इनमें गर्भित हैं ।

शंका - चौदह पूर्वोंके धारकोंको पहले नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, जिनवचनोंपर प्रत्ययस्थान अर्थात् विश्वास उत्पादन द्वारा दशपूर्वियोंके त्यागकी महिमा दिखलानेके लिये पूर्वमें उन्हें नमस्कार किया है । अथवा श्रुतपरिपाटीकी अपेक्षा पहले दशपूर्वियोंको नमस्कार किया है ।

चौदहपूर्वीक जिनोंको नमस्कार हो ।। १३ ।।

यहां 'जिनोंको' इस पदकी अनुवृत्ति आती है । समस्त श्रुतज्ञानके धारक चौदहपूर्वी

....

१ सयलागमपारगया सुदकेवलिणामसुप्पसिद्धा जे । एदाण बुद्धिरिद्धी चोद्दसपुव्वि त्ति णामेणं ।। ति. प. ४, १००१. सम्पूर्णश्रुतकेवलिता चतुर्दशपूर्वित्वम् । त. रा. ३, ३६, २.

पुव्वीणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि । सेसहेट्ठिमपुव्वीणं णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, तेसिं पि कदो चेव, तेहि विणा चोद्दसपुव्वाणुववत्तीदो । चोद्दसपुव्वस्सेव णामणिद्देसं कादूण किमट्ठं णमोक्कारो कीरदे ? विज्जाणुपवादस्स समत्तीए इव चोद्दसपुव्वसमत्तीए वि जिणवयणपच्चयदंसणादो । चोद्दसपुव्वसमत्तीए को पच्चओ ? चोद्दसपुव्वाणि समाणिय रत्तिं काओसग्गेण ट्ठिदस्स पहादसमए भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-कप्पवासियदेवेहि कयमहापूजा संखकाहला-तुररवसंकुला होदु । एदेसु दोसु ट्ठाणेसु जिणवयणपच्चओवलंभो । जिणवयणत्तं पडि सव्वंगपुव्वाणि समाणाणि त्ति तेंसि सव्वेसिं णामणिद्देसं काऊण णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, जिणवयणत्तणेण सव्वंगपुव्वेहि सरिसत्ते संते वि विज्जाणुप्पवाद-लोगविंदुसाराणं महल्लत्तमत्थि, एत्थेव देवपूजोवलंभादो । चोद्दसपुव्वहरो मिच्छत्तं ण गच्छादि, तम्हि भवे असंजमं च ण पडिवज्जदि, एसो एदस्स विसेसो ।

....

जिन हैं । उन चौदहपूर्वी जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका - शेष अधस्तनपूर्वियोंको नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, उनको भी नमस्कार किया ही है, क्योंकि, अधस्तन पूर्वोंके विना चौदह पूर्व घटित ही नहीं होते ।

शंका - चौदह पूर्वका ही नामनिर्देश करके किसलिये नमस्कार किया जाता है ?

समाधान - क्योंकि, विद्यानुप्रवादकी समाप्तिके समान चौदह पूर्वोंकी समाप्तिमें भी जिनवचनपर विश्वास देखा जाता है ।

शंका - चौदह पूर्वकी समाप्तिमें कौनसा विश्वास है ?

समाधान - चौदह पूर्वोंको समाप्त करके रात्रिमें कायोत्सर्गसे स्थित साधुकी प्रभात समयमें भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवों द्वारा शंख, काहला और तूर्यके शब्दसे व्याप्त महापूजा की जाती है । इन दो स्थानोंमें जिन वचनोंपर विश्वास पाया जाता है ।

शंका - जिनवचनकी अपेक्षासे सब अंग और पूर्व समान हैं, अतएव उन सबका नामनिर्देश करके नमस्कार क्यों नहीं किया गया ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, जिनवचन रूपसे सब अंग और पूर्वोंमें सदृशताके होनेपर भी विद्यानुप्रवाद और लोकविन्दुसारका महत्त्व है, क्योंकि, इनमें ही देवपूजा पायी जाती है । चौदह पूर्वका धारक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होता और उस भवमें असंयमको भी नहीं प्राप्त होता, यह इसकी विशेषता है ।

णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं ।। १४ ।।

अंग-सर-वंजण-लक्खण-छिण्ण-भोम्म-सुमिणंतरिक्खाणि महाणिमित्ताणमट्ठ अंगाणि । उत्तं च-

अगं सरो वंजण-लक्खणाणि छिण्णं च भौमं सुमिणंतरिक्खं ।
एदे णिमित्तेहि य राहणिज्जा जाणंति लोयस्स सुहासुहाइं ।। १९ ।।

तत्थ अंगगयमहाणिमित्तं णाम मणुस-तिरिक्खाणं सत्त-सहाव-वाद-पित्त-सेंभ-रस-रुधिर-मांस-मेदट्ठि-मज्ज-सुक्काणि सरीरवण्ण-गंध-रस-फासणिण्णुण्णदाणि जोएदूण जीविद-मरण-सुह-दुक्ख-लाहालाह-पवासादिविसयावगमो[1] । खर-पिंगलोलूव-वायस-सिव-सियाल-णर-णारीसरं सोऊण लाहालाह-सुह-दुक्ख-जीविद-मरणादीणं अवगमो सरमहाणिमित्तं णाम[2] । तिल-याणूग मसादिं दट्ठूण तेसिमवगमो वंजणं णाम

....

अष्टांग महानिमित्तोंमें कुशलताको प्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।। १४ ।।

अंग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न और अन्तरिक्ष, ये महानिमित्तीक आठ अंग हैं । कहा भी है -

अंग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न और अन्तरिक्ष, इन निमित्तोंसे आराधनीय साधु जनसमुदायके शुभाशुभको जानते हैं ।। १९ ।।

उनमें मनुष्य और तिर्यंचोंके सत्य-स्वभाव, वात, पित्त व कफ तथा रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, एवं शुक्र तथा शरीरके निम्न व उन्नत वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शको देख-कर जीवित, मरण, सुख, दुःख, लाभ, अलाभ और प्रवासादि विषयक ज्ञान अंगगत महानिमित्त है । खर, पिंगल, (नेवला, बन्दर या सर्पविशेष) उल्लू, काक, शिवा, शृगाल, नर और नारीके स्वरको सुनकर लाभालाभ, सुख-दुःख और जीवित-मरणादिको जानना स्वरमहानिमित्त कहा जाता

....

१ वातादिप्पगिदीओ रुहिरप्पहुदिस्सहावसत्ताइं । णिण्णाण उण्णयाणं अंगोवंगाण दंसणा पासा ।। णरतिरियाणं दट्ठुं जं जाणइ दुक्ख-सोक्ख-मरणाइं । कालत्तयणिप्पाणं अंगणिमित्तं पसिद्धं तु ।। ति. प. ४, १००६-१००७. अंग-प्रत्यंगदर्शनादिभिस्त्रिकालभाविसुख-दुःखादिविभावनमंगम् । त. रा. ३,३६,२.

२ णर-तिरियाण विचित्तं सद्दं सोदूण दुक्ख सोक्खाइं । कालत्तयणिप्पण्णं जं जाणइ तं सरणिमित्तं । ति. प. ४, १००८. अक्षरानक्षरशुभाशुभशब्दश्रवणेनेष्टानिष्टफलाविर्भावनं महानिमित्तं स्वरम् । त. रा. ३,३६,२.

महाणिमित्तं[1]। सोत्थिय-णंदावत्त-सिरीवच्छ-संखचक्कंकुस-चंद-सूर-रयणायरादिलक्खणाणि उर-उलाट-हत्थ-पादतलादिसु जहाकमेण अट्ठुत्तरसद-चउसट्ठि-बत्तीसं दट्ठुण तित्थयर-चक्कवट्ठि-बलदेव-वासुदेवत्तावगमो लक्खणं[2] णाम महाणिमित्तं। अंगछाया-विवज्जास-वत्थालंकारछेदं मणुव-तिरिक्खादीणं चेट्ठा-संठाणाणि दट्ठूण सुहासुहावगमो च्छिण्णं[3] णाम महाणिमित्तं। भूमिगयलक्खणाणि दट्ठूण गाम-णयर-खेड-कव्वड-घरारामादीणं[4] वुड्ढि-हाणिपदुप्पायणं भोम्मं[5] णाम महाणिमित्तं। छिण्ण-माला-

....

है। तिल, आनुअ और मशा आदिको देखकर उन सुख-दुःखादिकका जानना व्यञ्जन महानिमित्त है। उर, ललाट, हस्ततल और पादतलादिकमें यथाक्रमसे एक सौ आठ, चौंसठ व बत्तीस स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, श्रीवृक्ष, शंख, चक्र, अंकुश, चन्द्र, सूर्य एवं रत्नाकर आदि लक्षणोंको देखकर तीर्थंकरत्व, चक्रवर्तित्व एवं बलदेवत्व व वासुदेवत्व जानना लक्षण नामक महानिमित्त है। शरीरछायाकी विपरीतता, वस्त्र व अलंकारका छेद तथा मनुष्य और तिर्यंच आदिकोंकी चेष्टा व आकारको देखकर शुभाशुभका जानना छिन्न महानिमित्त कहा जाता है। भूमिगत लक्षणोंको देखकर ग्राम, नगर, खेडा, कर्वट, घर व आराम आदिकोंकी वृद्धि-हानिको कहना भौम नामक महानिमित्त है। छिन्न स्वप्न और माला स्वप्नके स्वरूपको देखकर भावी कार्यको जानना

....

१ सिर-मुह-कधंप्पहुदिसु तिल-मसयप्पहुदिआइ दट्ठूणं जं तियकालसुहाइं जाणइ तं वेंजणणिमित्तं ॥ ति. प. ४, १००९. शिरोमुख-ग्रीवादिषु तिलक-मशकलक्ष्मव्रणादिवीक्षणेन त्रिकालहिताहितवेदनं व्यंजनम्। त. रा. ३, ३६, २.

२ कर-चरणतलप्पहुदिसु पंकय-कुलिसादियाणि दट्ठूणं। जं तियकालसुहाइं लक्खइ तं लक्खणणिमित्तं ॥ ति. प. ४, १०१०. श्रीवृक्ष-स्वस्तिक-भृंगार-कलशादिलक्षणात् त्रैकालिकस्थानमानैश्वर्यादिविशेषज्ञानं लक्षणम्। त. रा. ३, ३६, २.

३ सुर-दाणव-रक्खस-णर-तिरिएहिं-छिण्णसत्थ-वत्थाणिं। पासाद-णयर-देसादियाणि चिण्हाणि दट्ठूणं ॥ कालत्तयसंभूदं सुहासुहं मरण-विविहदव्वं च सुह-दुक्खाइं लक्खइं चिण्हणिमित्तं ति तं जाणइ ॥ ति. प. ४, १०११-१०१२. वस्त्र-शस्त्र-छत्रोपानदासन-शयनादिषु देव-मानुष-राक्षसादिविभागैः शस्त्र-कण्टक-मूषिकादिकृत-छेदनदंशनात् कालत्रयविषयलाभालाभ-सुख-दुःखादिसूचनं छिन्नम्। त. रा. ३, ३६, २.

४ अप्रतौ 'कव्वडघपुरायादीणं', आ-काप्रत्योः 'कव्वडघपुरारायादीणं', मप्रतौ 'कव्वडघरारादीणं' इति पाठः।

५ घण-सुसिर-णिद्ध-लुक्खप्पहुदिगुणे भाविदूण भूमीए। जं जाणइ खय-वड्ढिं तम्मयस-कणय-रजद-पमुहाणं ॥ दिसि-विदिसअंतरेसुं चउरंगबलं ठिदं च दट्ठूण। जं जाणइ जयमजयं तं भउमणिमित्तमुद्दिट्ठं ॥ ति. प. ४, १००४-१००५. भुवो घन-शुषिर-स्निग्ध-रुक्षादिविभावनेन पूर्वादिदिक्सूत्रनिवासेन वा वृद्धि-हानि-जय-पराजयादिविज्ञानं भूमेरन्तर्निहितसुवर्ण-रजतादिसंसूचनं च भौमं। त. रा. ३,३६,२.

सुमिणाणं सरूवं दट्ठूण भाविकज्जावगमो सुमिणा[1] णाम महाणिमित्तं तत्थ वसह-मायंग-सीह-सायर-चंदाइच्च-जलकलियकलस-पउमाहिसेय-जलण-पउमायर-भवणविमाण-रयणरासि-सीहासण-कीडंतमच्छ-पफुल्लदामजुवलाणं अण्णोण्णसंबंधविरहियाणं सुत्ततित्थयरमादूणं सोलसण्णं दंसणं छिण्णसुमिणओ णाम । पुव्वावरेण घडंताणं भावाणं सुमिणंतरेण दंसणं मालासुमिणओ णाम । चंदाइच्च-गहाणमुदयत्थवण-जय-पराजय-गहघट्टण-विज्जुचडक्किंदाउह-चंदाइच्च-परिवेसुवराग-बिंबभेयादिं दट्ठूण सुहासुहावगमो अंतरिक्खं णाम महाणिमित्तं[2] । एदेसु अट्ठंगमहाणिमित्तेसु कुसलाणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि । जिणसद्दाणुवुत्तीदो णासंजद-संजदासंजदाणं गहणं । णाणेण विसेसिदजिणाणं पुव्वमेव णमोक्कारो किमट्ठं कदो ? चारित्तदो णाणस्स पहाणत्तपदु-

....

स्वप्न नामक महानिमित्त है । उनमें वृषभ, हाथी, सिंह, समुद्र, चन्द्र, सूर्य, जलसे परिपूर्ण कलश, लक्ष्मीका अभिषेक, अग्नि, तालाब, भवनविमान, रत्नराशि, सिंहासन, क्रीडा करती मछलियोंका युगल और पुष्पमालाओंका युगल, इन परस्परके सम्बन्धसे रहित सोलह स्वप्नोंका सोती हुई जिनजननीको जो दर्शन होता है वह छिन्न स्वप्न है । पूर्वापरसे सम्बन्ध रहनेवाले भावोंका स्वप्नान्तरसे देखना माला स्वप्न है । चन्द्र, सूर्य एवं ग्रहके उदय व अस्तमन तथा जय-पराजय, ग्रहघर्षण, विजलीका कडकता इन्द्रधनुष, चन्द्र व सूर्यके परिवेष, उपराग एवं बिम्बभेदादिको देखकर शुभाशुभका जानना अन्तरिक्ष नामक महानिमित्त है । इन अष्टांगमहानिमित्तोंमें कुशल जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है । जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे असंयत और संयतासंयतोंका ग्रहण नहीं है ।

शंका - ज्ञानसे विशिष्ट जिनोंको पहिले ही नमस्कार किसलिये किया ?

समाधान - चारित्रकी अपेक्षा ज्ञानकी प्रधानता बतलानेके लिये ज्ञानविशिष्ट जिनोंको

....

१ वातादिदोसचत्तो पच्छिमरत्ते मुयंक-रविपहुदिं णियमुहकमलपविट्ठं देक्खिय सउणम्मि सुहसउणं ॥ घडतेलब्भंगादिं रासह-करभादिएसु आरुहणं । परदेसगमण सव्वं जं देक्खइ असुहसउणं तं ॥ जं भासइ दुक्खसुहप्पमुहं कालत्तए वि संबादं । तं चिय सउणणिमित्तं चिण्हो मालो त्ति दोभेदं ॥ करि-केसरिपहुदीणं दंसणमेत्तादि चिण्हसउणं तं । पुव्वावरसंबंधं सउणं तं मालसउणो त्ति ॥ ति. प. ४, १०१३-१०१६. वात-पित्त-श्लेष्मदोषोदयरहितस्य पश्चिमरात्रिविभागे चन्द्र-सूर्यधरादिसमुद्रमुखप्रवेशसकलमहीमण्डलोपगूहनादिशुभ-घृत-तैलाक्तात्मीयदेहखर-करभारूढावदिग्गमनाद्यशुभस्वप्नदर्शनादागामिजीवित-मरण-सुख-दुःखाद्याविर्भावकः स्वप्नः । त. रा. ३,३६,२.

२ रवि-ससि-गहपहुदीणं उदयत्थमणादिआइं दट्ठूणं । खीणत्तं दुक्ख-सुहं जं जाणइ तं हि णहणिमित्तं । ति. प. ४-१००३. तत्र रवि-शशि-ग्रह-नक्षत्र-भगणोदयास्तमयादिभिरतीतानागतफलप्रविभागदर्शनमंतरिक्षम् ॥ त. रा. ३, ३६, २.

प्पायणट्ठं । कुदो तत्तो तस्स पहाणत्तं ? णाणेण विणा चरणाणुववत्तीदो । चरणफलविसेसियजिणपणमणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

णमो विउव्वणपत्ताणं ।। १५ ।।

अणिमा महिमा लहिमा पत्ती पागम्मं ईसित्तं वसित्तं कामरूवित्तमिदि विउव्वणमट्ठविहं । तत्थ महापरिमाणं सरीरं संकोडिय परमाणुपमाणसरीरेण अवट्ठाणमणिमा णाम[1] । परमाणुपमाण देहत्थस्स मेरुगिरिसरिससरीरकरणं महिमा णाम । मेरुपमाणसरीरेण मक्कडतंतुहि परिसक्कणणिमित्तसत्ती लघिमा णाम[2] । भूमिट्ठियस्स करेण चंदाइच्चबिंबच्छिवणसत्ती पत्ती[3] णाम । कुलसेल-मेरुमहीहर-भूमीणं बाहम-

....

पहले ही नमस्कार किया है ।

शंका - चारित्रसे ज्ञानकी प्रधानता क्यों है ?

समाधान - चूंकि विना ज्ञानके चारित्र नहीं होता, अतः ज्ञान प्रधान है ।

चारित्रके फलसे विशेषताको प्राप्त जिनोंको नमस्कार करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते है-

विक्रिया ऋद्धिको प्राप्त हुए जिनोंको नमस्कार हो ।। १५ ।।

अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामरूपित्व, इस प्रकार विक्रिया ऋद्धि आठ प्रकार है । उनमें महा परिणाम युक्त शरीरको संकुचित करके परमाणु प्रमाण शरीरसे स्थित होना अणिमा नामक विक्रिया ऋद्धि है । परमाणु प्रमाण देहस्थ वस्तुको मेरु पर्वतके सदृश करनेको महिमा ऋद्धि कहते हैं । मेरु प्रमाण शरीरसे मकडीके तंतुओंपरसे चलनेमें निमित्तभूत शक्तिका नाम लघिमा है । भूमिमें स्थित रहकर हाथसे चन्द्र व सूर्यके बिम्बको छूनेकी शक्ति प्राप्ति ऋद्धि कही जाती है ।

....

१ अणुतणुकरणं अणिमा अणुछिद्दे पविसिदूण तत्थेव । विकरदि खंदावारं णिएसमवि चक्कवट्टिस्स ।। ति. प. ४-१०२६ तत्राणुशरीरविकरणमणिमा विसछिद्रमपि प्रविश्याऽऽसित्वा तत्र च चक्रवर्तिपरिवारविभूतिं सृजेत् । त. रा. ३, ३६, २.

२ मेरूवमाणदेहा महिमा अणिलाउ लघुतरो लघिमा । ति. प. ४-१०२७. मेरोरपि महत्तरशरीरविकरणं महिमा ।। वायोरपि लघुतरशरीरता लघिमा ।। त. रा. ३, ३६, २.

३ भूमीए चिट्ठंतो तो अंगुलिसग्गेण सूर-ससिपहुदिं । मेरुसिहराणि अण्णं जं पावदि पत्तरिद्धी सा ।। ति. प. ४-१०२८. भूमौ स्थित्वांगुल्यग्रेण मेरुशिखर-दिवाकरादिस्पर्शनसामर्थ्यप्राप्तिः । त. रा. ३, ३६, २.

काऊण तासु गमणसत्ती तवच्छरणबलेणुप्पण्णा पागम्मं[1] णाम। सव्वेसिं जीवाणं गाम-णयर-खेडादीणं च भुंजणसत्ती तवुप्पण्णा ईसित्तं णाम। माणुस-मायंग-हरि-तुरयादीणं सगिच्छाए वट्टावणसत्ती वसित्तं[2] णाम। ण च वसित्तस्स ईसित्तम्मि पवेसो, अवसाणं पि हदाकारेण ईसित्तकरणुवलंभादो। इच्छिदरूवग्गहणसत्ती कामरूवित्तं[3] णाम। ईसित्त-वसित्ताणं कधं वेउव्वियत्तं ? ण, विविहगुणइड्ढिजुत्तं वेउव्वियमिदि तेसिं वेउव्वियत्ताविरोहादो। एत्थ एगसंजोगादिणा विसदपंचवंचासविउव्वणभेदा उप्पाए-

....

कुलाचल और मेरु पर्वतके पृथिवीकायिक जीवोंको बाधा न पहुंचाकर उनमें तपश्चरणके बलसे उत्पन्न हुई गमनशक्तिको प्राकाम्य ऋद्धि कहते हैं। सब जीवों तथा ग्राम, नगर एवं खेडे आदिकोंके भोगनेकी तपसे उत्पन्न हुई शक्ति ईशित्व ऋद्धि कही जाती है। मनुष्य, हाथी, सिंह एवं घोडे आदिकके अपनी इच्छासे वर्ताने की शक्तिका नाम वशित्व ऋद्धि है। वशित्वका ईशित्व ऋद्धिमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि, अवशीकृतोंका भी उनका आकार नष्ट किये विना ईशित्वकरण पाया जाता है। इच्छित रूपके ग्रहण करनेकी शक्तिका नाम कामरूपित्व है।

शंका - ईशित्व और वशित्वके विक्रियापन कैसे सम्भव है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, नाना प्रकार गुण व ऋद्धि युक्त होनेका नाम विक्रिया है, अतएव उन दोनोंके विक्रियापनेमें कोई विरोध नहीं है।

यहां एकसंयोग, द्विसंयोग आदिके द्वारा दो सौ पचवन विक्रियाके भेद उत्पन्न करना चाहिये, क्योंकि, उनके कारण विचित्र हैं। (एकसंयोगी ८, द्विसंयोगी $\frac{८ \times ७}{१ \times २}$=२८; त्रिसंयोगी $\frac{८ \times ७ \times ६}{१ \times २ \times ३}$=५६ चतुःसंयोगी $\frac{८ \times ७ \times ६ \times ५}{१ \times २ \times ३ \times ४}$=७०; पंचसंयोगी $\frac{८ \times ७ \times ६ \times ५ \times ४}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५}$=५६; षट्संयोगी $\frac{८ \times ७ \times ६ \times ५ \times ४ \times ३}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६}$ =२८, सप्तसंयोगी $\frac{८ \times ७ \times ६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६ \times ७}$ =८; अष्टसंयोगी १; समस्तभंग

....

१ सलिले वि य भूमीए उम्मज्ज-णिमज्जणाणि जं कुणदि। भूमीए वि य सलिले गच्छदि पाकम्मरिद्धी सा॥ ति. प. ४-१०२९. अप्सु भूमाविव गमनं भूमौ जल इवोन्मज्जनकरणं प्राकाम्यम्। त. रा. ३, ३६, २.

२ णिस्सेसाण पहुतं जगाण ईसत्तणामरिद्धी सा। वसमेंति तमबलेणं जं जीवोहा वसित्तरिद्धी सा॥ ति. प. ४-१०३०. त्रैलोक्यस्य प्रभुता ईशित्वम्। सर्वजीववशीकरणलब्धिर्वशित्वम्। त. रा. ३, ३६, २.

३ जुगवं बहुरूवाणिं जं विरयदि कामरूवरिद्धी सा॥ ति. प. ४-१०३२. युगपदनेकाकाररूपविकरणशक्तिः कामरूपित्वमिति। त. रा. ३, ३६, २.

दव्वा, तक्कारणस्स वइचित्तियत्तादो । एदेहि अट्ठहि विउव्वणसत्तीहि सहियाणं णमोक्कारो कीरदे । अट्ठगुणरिद्धिजुत्ताणं देवाणं एसो णमोक्कारो किण्ण पावदे ? ण एस दोसो, जिणसद्दाणुवट्टणेण तण्णिराकरणादो । णच देवाणं जिणत्तमत्थि तत्थ संजमाभावादो । एत्तो उवरि जहातहाणुपुव्विक्कमो दट्ठव्वो, महल्लपरिवाडीए अणुवलंभादो ।

णमो विज्जाहराणं ।। १६ ।।

तिविहाओ विज्जाओ जादि-कुल-तवविज्जाभेएण । उत्तं च-

जादीसु होइ विज्जा कुलविज्जा तह य होइ तवविज्जा ।
विज्जाहरेसु एदा तवविज्जा होइ साहूणं[१] ।। २० ।।

तत्थ सगमादुपक्खादो लद्धविज्जाओ जादिविज्जाओ णाम । पिदुपक्खुवलद्धाओ कुलविज्जाओ । छट्ठट्ठमादिउववासविहाणेहि साहिदाओ तवविज्जाओ । एवमेदाओ

....

८+२८+५६+७०+५६+२८+८+१=२५५ होते हैं ।) इन आठ विक्रिया शक्तियोंसे सहित जिनोंको नमस्कार किया जाता है ।

शंका - आठ गुण ऋद्धियोंसे युक्त देवोंको यह नमस्कार क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जिन शब्दकी अनुवृत्ति आनेसे उनका निराकारण हो जाता है । कारण कि देव जिन नहीं हैं, क्योंकि, उनमें संयमका अभाव है ।

यहांसे आगे यथा-तथा-आनुपूर्वीक्रम समझना चाहिये, क्योंकि, महानताकी परिपाटी नहीं पाई जाती ।

विद्याधरोंको नमस्कार हो ।। १६ ।।

जातिविद्या, कुलविद्या और तपविद्याके भेदसे विद्यायें तीन प्रकार हैं । कहा भी है -

जातियोंमें विद्या अर्थात् जातिविद्या है, कुलविद्या तथा तपविद्या भी विद्या हैं । ये विद्यायें विद्याधरोंमें होती हैं । किन्तु तपविद्या साधुओंके होती है ।। २० ।।

इन विद्याओंमें स्वकीय मातृपक्षसे प्राप्त हुई विद्यायें जातिविद्यायें और पितृपक्षसे प्राप्त हुई कुलविद्यायें कहलाती हैं । षष्ठ और अष्टम आदि उपवासोंके करनेसे सिद्ध की गई तपविद्यायें

....

१ कुल-जाईविज्जाओ साहियविज्जा अणेयभेयाओ । विज्जाहरपुरिस-पुरंधियाण वरसोक्खजणणीओ ।। ति. प. ४-१३८.

तिविहाओ विज्जाओ होंति विज्जाहराणं । तेण वेअड्डणिवासिमणुआ वि विज्जाहरा, सयलविज्जाओ छंडिऊण गहिदसंजमविज्जाहरा वि होंति विज्जाहरा, विज्जाविसयविण्णाणस्स तत्थुवलंभादो । पढिदविज्जाणुपवादा वि विज्जाहरा, तेसिं पि विज्जाविसयविण्णाणुवलंभादो । केसिमेत्थ गहणं ? ण ताव वेयड्ढुप्पण्णअसंजदाणं गहणं, तेसिं जिणत्ताभावादो । परिसेसादो सेसदुविहविज्जाहरा एत्थ घेत्तव्वा । दसपुव्वहराणमेत्थ ण ग्गहणं, पउणरुत्तियादो ? ण, तत्थ दसपुव्वविसयणाणुवलक्खियजिणाणं णमोक्कारकरणादो, एत्थ सिद्धासेसविज्जापेसणपरिच्चागेणुवलक्खियजिणाणं विज्जाहरत्तब्भुवगमादो त्ति । सिद्धविज्जाणं पेसणं जे ण इच्छंति केवलं धरंति चेव अण्णाणणिवित्तीए ते विज्जाहरजिणा णाम । तेभ्यो नमः ।

णमो चारणाणं ।। १७ ।।

जल-जंघ-तंतु-पुप्फ-वीय-आगास-सेडीभेएण अट्ठविहा चारणा । उत्तं च -

....

है । इस प्रकार ये तीन प्रकारकी विद्यायें विद्याधरोंके होती हैं । इससे वैताढ्य पर्वतपर निवास करनेवाले मनुष्य भी विद्याधर होते हैं, सब विद्याओंको छोडकर संयमको ग्रहण करनेवाले विद्याधर भी विद्याधर होते हैं, क्योंकि, विद्याविषयक विज्ञान उनमें पाया जाता है । जिन्होंने विद्यानुप्रवादको पढ लिया है वे भी विद्याधर हैं, क्योंकि, उनके भी विद्याविषयक विज्ञान पाया जात है ।

शंका - इन तीन प्रकारके विद्याधरोंमेंसे यहां किनका ग्रहण है ?

समाधान - वैताढ्य पर्वतपर उत्पन्न असंयतोंका यहां ग्रहण नहीं है, क्योंकि, उनके जिनपना नहीं पाया जाता । पारिशेष न्यायसे शेष दो प्रकारके विद्याधरोंका यहाँ ग्रहण करना चाहिये ।

शंका - दशपूर्वधरोंका ग्रहण यहाँ नहीं करना चाहिये, क्योंकि, पुनरुक्ति दोष आता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, वहां पर दश पूर्वविषयक ज्ञानसे उपलक्षित जिनोंको नमस्कार किया गया है, किन्तु यहां सिद्ध हुई समस्त विद्याओंके कार्यके परित्यागसे उपलक्षित जिनोंको विद्याधर स्वीकार किया है । जो सिद्ध हुई विद्याओंसे काम लेनेकी इच्छा नहीं करते, केवल अज्ञानकी निवृत्तिके लिये उन्हें धारण ही करते हैं, वे विद्याधर जिन हैं । उनके लिये नमस्कार हो ।

चारण ऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ।। १७ ।।

जल, जंघा, तन्तु, फल, पुष्प, बीज, आकाश और श्रेणीके भेदसे चारण ऋद्धि आठ प्रकार की है । कहा भी है -

जल-जंघ-तंतु-फल-पुप्फ-वीय-आगास-सेडिगइकुसला ।

अट्ठविहचारणगणा पइरिक्कसुहं पविहरंति[१] ॥ २१ ॥

तत्थ भूमीए इव जलकाइयजीवाणं पीडमकाऊण जलमफुसंता जहिच्छाए जलगमणसमत्था रिसओ जलचारणा[२] णाम । पउमणिपत्तं व जलपासेण विणा जलमज्झगामिणो जलचारणा त्ति किण्ण उच्चंति ? ण एस दोसो, इच्छिज्जमाणत्तादो । जलचारण-पागम्मरिद्धीणं दोण्हं को विसेसो ? घणपुढवि-मेरुसायराणमंतो सव्वसरीरेण पवेससत्ती पागम्मं णाम । तत्थ जीवपरिहरणकउसल्लं चारणत्तं । तंतु बल-पुप्फ-बीज-चारणाणं पि व वत्तव्वं । भूमीए पुढविकाइयजीवाणं बाहमकाऊण अणेगजोयणसय-

....

जल, जंघा, तन्तु, फल, पुष्प, बीज, आकाश और श्रेणीका आलम्बन लेकर गमनमें कुशल ऐसे आठ प्रकारके चारणगण अत्यन्त सुखपूर्वक विहार करते हैं ॥२१॥

उनमें जो ऋषि जलकायिक जीवोंको पीडा न पहुंचाकर जलको न छूते हुए इच्छानुसार भूमिके समान जलमें गमन करनेमें समर्थ हैं वे जलचारण ऋषि कहलाते हैं ।

शंका - पद्मिनीपत्रके समान जलके मध्यमें गमन करनेवाले जलचारण क्यों नहीं कहलाते ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यह अभीष्ट ही है ।

शंका - जलचारण और प्राकाम्य इन दोनों ऋद्धियोंमें क्या भेद है ?

समाधान - सघन पृथिवी, मेरु और समुद्रके भीतर पूरे शरीरसे प्रवेश करनेकी शक्तिको प्राकाम्य ऋद्धि कहते हैं, और वहां जीवोंके परिहारकी कुशलताका नाम चारण ऋद्धि है ।

तन्तुचारण, फलचारण, पुष्पचारण और बीजचारणका स्वरूप भी जलचारणोंके समान

....

१ चारणसिद्धी बहुविहवियप्पसंदोहवित्थरिदा ॥ जल-जंघा-फल-पुप्फं-पत्तग्गिसिहाण धूम-मेघाणं । धारामक्कडतंतू-जोदी-मरुदाण चारणा कमसो ॥ ति. प. ४-१०३५ तत्र चारणा अनेकविधाः जल-जंघा-तंतु-पत्र-श्रेण्यग्निशिखाद्यालंबनगमनाः । त. रा. ३, ३६, २. अइसयचरणसमत्था जंघा विज्जाहिं चारणा-मुणओ । जंघाहिं जाइ पढमो नीसं काउं रविकरे वि ॥ एगुप्पाएण गओ रुयगवरम्मिओ तओ पडिनियत्तो । बीएणं णंदिस्सरमिहं तओ एइ तइएणं ॥ पढमेणं पंडगवण बीओप्पाएण णंदणं एइ । तइओप्पाएण तओ तह जंघाचारणो हो (ए) इ ॥ पढमेण माणुसोत्तरनगं स नंदिस्सरं तु बिइएण । एइ तओ तइएणं कयचेइयवंदणो इहइं ॥ पढमेण नंदणवणे बीओप्पाएण पंडगवणंमि । एइ इहं तइएणं जो विज्जाचारणो होइ ॥ विशे. भा. ७८९-७९३.

२ अविराहियप्पुक्कुर जीवे पदखेवणेहिं जं जादि । धावेदि जलहिमज्झे सच्चिय जलचारणा रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०३६.

गामिणो जंघचारणा[1] णाम । धूमग्गि-गिरि-तरु-तंतुसंताणेसु उड्ढारोहणसत्तिसंजुत्ता सेडीचारणा णाम । चउहि अंगुलेहिंतो अहियपमाणेण भूमीदो उवरि आयासे गच्छंता आगासचारणा णाम । आगासचारणाणमुवरि उच्चमाणआगासगामीणं च को विसेसो ? उच्चदे-जीवपीडाए विणा पादुक्खेवेण आगासगामिणो आगासचारणा णाम । पलियंक-काउसग्ग-सयणासण-पादुक्खेवादिसव्वपयारेहि आगासे संचरणसमत्था आगासगामिणो । चारणाणमेत्थ एगसंजोगादिकमेण विसदपंचवंचास भंगा उप्पाएदव्वा । कधमेगं चारित्तं विचित्तसत्तिसमुप्पाययं ? ण, परिणामभेएण णाणाभेदभिण्णचारित्तादो चारणबहुत्तं पडि विरोहाभावादो । कधं पुण चारणा अट्ठविहा त्ति जुज्जदे ? ण एस दोसो, णियमाभावादो,

....

कहना चाहिये । भूमिमें पृथिवीकायिक जीवोंको बाधा न करके सैकडों योजन गमन करनेवाले जंघाचारण ऋषि कहलाते हैं । धूम, अग्नि, पर्वत और वृक्षके तन्तुसमूहपरसे ऊपर चढनेकी शक्तिसे संयुक्त श्रेणीचारण हैं । चार अंगुलोंसे अधिक प्रमाणमें भूमिसे ऊपर आकाशमें गमन करनेवाले ऋषि आकाशचारण कहे जाते हैं ।

शंका - आकाशचारण और आगे कहे जानेवाले आकाशगामीके क्या भेद है ?

समाधान - इस शंकाकारका उत्तर कहते हैं । जीवपीडाके बिना पैर उठाकर आकाशमें गमन करनेवाले आकाशचारण हैं । पल्यंकासन, कायोत्सर्गासन, शयनासन और पैर उठाकर इत्यादि सब प्रकारोंसे आकाशमें गमन करनेमें समर्थ ऋषि आकाशगामी कहे जाते हैं ।

यहां चारण ऋषियोंके एकसंयोग, द्विसंयोगादिके क्रमसे दो सौ पचवन भंग उत्पन्न करना चाहिये । (देखो सूत्र १५ की टीका) ।

शंका - एक ही चारित्र इन विचित्र शक्तियोंका उत्पादक कैसे हो सकता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, परिणामके भेदसे नाना प्रकार चारित्र होनेके कारण चारणोंके बहुत होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका - जब चारणोंके भेद दो सौ पचवन हैं तो फिर उन्हें आठ प्रकारका बतलाना कैसे युक्त है ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, उनके आठ प्रकारके होनेका नियम

....

१ चउरंगुलमेत्तमहिं छंडिय गयणम्मि कुडिलजाणु विणा । जं बहुजोयणगमणं सा जंघाचारणा रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०३७.